International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 2; Issue 4; July 2016; Page No. 74-75

भारत में लोकगाथाओं की बड़ी ही व्यापक और दीर्घ परंपरा

डॉ. कामना कौशिक
विभाग अध्यक्ष, सी. एम. के. नेशनल पी. जी. कॉलेज, सिरसा, हरियाणा, भारत।

प्रस्तावना

भारत में लोकगाथाओं की बड़ी ही व्यापक और दीर्घ परंपरा पाई जाती है परंतु इसकी कोई निश्चित संज्ञा नहीं है। विभिन्न भारतीय भाषाओं में इनके भिन्न भिन्न नाम मिलते हैं। महाराष्ट्र में इन्हें 'पाँवड़ा', गुजरात में श्कथागीतश तथा राजस्थान में 'गीतकथा' कहते हैं।

भारतीय लोकगाथाओं के अनेक प्रकार हैं। स्थूल रूप से इनका वर्गीकरण विषय तथा आकार की दृष्टि से किया जा सकता है। आकार की दृष्टि से ये रचनाएँ लघु और बृहंद् दोनों प्रकार की पाई जाती हैं। बृहद् गाथाओं का आकार कभी कभी प्रबंध काव्यों के समान भी पाया जाता है।

किंतु लोकगाथाओं का वास्तविक वर्गीकरण विषय की दृष्टि से ही समीचीन होगा। डा. कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार ये त्रिविध हैं।

१. प्रेमकथात्मक गाथाए
२. वीरकथात्मक गाथाए
३. रोमांच कथात्मक गाथा।

प्रथम कोटि की लोकगाथाओं में प्रेम संबंधी वर्णन ही अधिक रहता है। प्रणय में उत्पन्न अनेक घटनाएँ एक स्थान पर सँजो दी जाती हैं। इनमें प्रेम विषम परिस्थिति में उत्पन्न होता है तथा उसी में पलता और बढ़ता है। इसी कारण संघर्ष की अवस्था अनिवार्य होती है। भोजपुरी लोकगाथाओं में श्कुसुम देवीश श्भगवती देवीश और श्लचियाश की गाथाएँ इसी प्रकार की हैं। बिहूला बाला लखंदरए श्शोभानयका बनजाराश तथा भरथरी चरित में वियोग की शीर्षावस्था के दर्शन होते हैं। राजस्थान में प्रचलित श्ढोला मारूश की गाथा तथा पंजाब की श्हीर राँझाश एवं श्सोहनी महीवालश नामक गाथाएँ हृदय को रसमान कर देने में पूर्ण सक्षम हैं।

द्वितीय वर्ग की गाथाएँ वीर कथात्मक गाथाएँ हैं। इन लोकगाथाओं में किसी वीर के साहसपूर्ण कौशल का वर्णन अभीष्ट होता है। इस प्रकार की लोकगाथाओं में प्रायः उसी वीर पुरुष के चरित्र को उभारा जाता है जो नायक होता है। कहीं तो वह किसी आपद्ग्रस्त नारी की रक्षा करते हुए दिखाई पड़ता हैए कहीं न्याय की विजय के लिए अन्याय से संघर्ष करता हुआ। इस प्रकार की गाथाओं में श्आल्हाश सर्वश्रेष्ठ है। 'लोरिकायन' तथा श्कुँवर विजयमलश की गाथाएँ भी इसी कोटि में आती हैं।

तृतीय प्रकार की गाथाओं में रोमांच या रोमांस की प्रधानता होती है। इस प्रकार की गाथाएँ प्रायः नायिकाप्रधान पाई जाती हैं। नायिकाओं का लौकिक जीवन रोमांचकारी घटनाओं से भरा हुआ होता है। इस कोटे में प्रमुख रूप से दो लोकगाथाएँ उल्लेखनीय हैं. 'सोरठी' तथा श्विहुला बाला लखंदारश। इनका मुख्य उद्देश्य सत्य की असत्य पर विजय हैं।

डाण सत्यव्रत सिन्हा ने इन तीनों के अतिरिक्त एक और वर्ग माना है. योगकथात्मक लोकगाथाएँ।

कथा में नायक बाद में योग धारणकर जोगी बन जाते है और सभी सुखसुविधाएँ छोड़कर संसार से विरक्त हो जाते हैं। इन्होंने इस कोटि के अंर्तगत श्राजा भरथरीश तथा श्राजा गोपीचंद्रश की गाथाओं को अलग से स्थान दिया है।

भारतीय बनजारों के जीवन से संबंधित यह प्रेमकथा बड़ी ही प्रभावोत्पादक है। इसका नायक शोभा नायक है जो व्यापार के लिए मोरंग देश जाता हैए तथा इसकी नायिका जसुमति है। विरह और पातिव्रत धर्म का इस गाथा में बड़ा ही मनोहारी वर्णन है। इसमें सामाजिक कुरीतियों तथा अंधविश्वासों एवं अनेक कौटुंबिक पहलुओं पर रोचक ढंग से प्रकाश डाला गया है। इस लोकगाथा के मैथिलीए मगही तथा भोजपुरी रूप मिलते हैं।

इसका संबंध चारण काल से भी माना जाता है। इसके रचयिता के रूप में श्जगनिकश का नाम लिया जाता है। इस लोकगाथा के नायक आल्हा और ऊदल नामक वीरों का संबंध महोबे के राजा परमर्दिदेव से है। महोबे का पक्ष लेकर इन दोनों वीरों ने अनेक भयानक युद्ध किए तथा उस काल के प्रसिद्ध वीर पृथ्वीराज चौहान को भी परास्त किया। इस लोकगाथा में वीररस की प्रधानता है और यह ढोल एवं नगाड़े पर गाई जाती है।

नायक लोरिक के शौर्य से ही यह गाथा भरी पड़ी है। लोरिक का चरित्र प्रधान होने से यह लोकगाथा लोरिकी के नाम से अभिहित हुई। लोरिक का मुख्य उद्देश्य सती स्त्रियों का उद्धार तथा दुष्टों का विनाश करना था। चार खंडों में यह लोकगाथा गाई जाती हैं। इसमें वीरकाव्य के सभी गुण विद्यमान है। यद्यपि यह मुख्य रूप से भोजपुरी प्रदेशों में ही गाई जाती है पर इसे भिन्न–भिन्न रूप मैथिलीए छत्तीसगढ़ी तथा बँगला में भी मिलते हैं।

इस लोकगाथा को बिहुला बाला लखंदर के नाम से भोजपुरी अंचल में सुना जा सकता है। इसमें स्त्रियों की पतिव्रतता का बड़ा ही प्रभावशाली चित्रण हुआ है। वहाँ इसका स्थान सावित्री सत्यवान से किसी भी स्थिति में कम नहीं है। बिहुला अपने पति बाला लखंदर कोए जिसेए साँप काट खाता हैए बचाने के लिए स्वर्ग जाती हैं और वहाँ अपने अभीष्ट को प्राप्त करती हैं। पूर्वी बिहार और बंगाल में नागपंचमी के दिन बिहुला सती की पूजा होती है। गायक इस गाथा को बड़ी ही श्रद्धा के साथ गाते हैं। स्त्रियों में यह गाथा अधिक लोकप्रिय है। इस लोकगाथा का मैथिली और बँगला रूप भी मिलता है।

नौ नाथों में इन्हें भी एक नाथ का स्थान प्राप्त था। इनकी गाथा विशेष रूप से जोगियों में ही प्रचलित है। गोपीचंद राजपाट, भोगविलास सब कुछ छोड़कर माता मैनावती के कहने पर वैराग्य ग्रहण करने वन में चले गए। उनके इस त्याग की कथा ही प्रस्तुत लोकगाथा में प्रचलित है। भारतवर्ष की प्रायः समस्त जनपदीय बोलियों में गोपीचंद की गाथा प्रचलित है। चूँकि गोपीचंद का संबंध बंगाल के पालवंश से था, इसलिए इस गाथा का सबसे अधिक प्रचलन बंगाल में है। यह लोकगाथा भोजपुरी, मगही, मैथिली, पंजाबी, सिंधी इत्यादि में भी पाई जाती है।

राजा भरथरी और रानी सामदेई का वृत्तांत ही इस लोकगाथा का वर्ण्य विषय है। इसे प्रायः जोगी लोग ही गाते हैं। राजा भरथरी का संबंध उज्जैन के राजवंश से था। किन्हीं कारणों से कालांतर में इन्होंने गुरु गोरखनाथ का शिष्यत्व स्वीकार क्र लिया और अपनी युवा रानी को छोड़कर योगी बन गए। इनके कई ग्रंथ भी मिलते हैं।

लोकगाथाओं की सबसे उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इनके रचयिता अज्ञात हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इनके रचयिता लापरवाह थे और लंबी लोककथाओं की रचना के बाद अपना नाम देना भूल जाते थे। यही कारण है कि परंपरा से चली आती हुई लोकगाथाओं में जब लोग अपने बनाए हुए पद जोड़ देते हैं तब पता ही नहीं चलता। इन लोकगाथाओं में तत्कालीन सामाजिक स्थिति की झलक मिलती हैं।

लोकगाथाओं के प्रामाणिक मूल पाठ का अभाव मिलता है। रचयिता के अज्ञात होने के कारण यह स्वाभाविक भी है। प्राप्त लोकगाथाओं के रचयिता एक बार लोकगाथाओं का सूत्रपात करके उन्हें समाज को सौंप देते तथा स्वयं हट जाते हैंए और उसके बाद लोकगाथाओं की एक ऐसी निरंतर धारा प्रवाहित होने लगती है जिसका कभी अंत नहीं होता। लोकगाथाओं को प्रत्येक युग अपनी निजी संपत्ति समझता है और प्रत्येक गवैया अपनी इच्छानुसार कुछ पंक्तियाँ भी जोड़ देता है। जैसे जैसे ये लोकगाथाएँ एक गवैये से दूसरे गवैये के पास जाती हैं इनमें परिवर्तन होता जाता है। इस प्रकार इन के प्रामाणिक पाठ का मिलना नितांत असंभव हो गया है।

लोकगाथाओं में संगीत की स्थिति अनिवार्य होती है। चूँकि इनमें सूक्ष्म भावों की व्यंजना नहीं पाई जातीए इसलिए इनमें साहित्यिकता का अभाव होता है। यद्यपि प्राचीन भारतीय लोकगाथाओं में प्रायः नृत्य का समावेश अनिवार्य थाए तथापि धीरे धीरे यह गौण होता गया और आज तो दिखाई ही नहीं पड़ता।

लोककथाएँ चाहे जहाँ की भी हों, स्थान विशेष पर पहुँचकर वहाँ की विशेषताएँ अपना लेती हैं। उनका निर्माण प्रायः किसी घटना के कारण होता है और इनमें तद्देशीय वातावरण एवं स्थानीयता का समावेश हो जाता है। श्लोरिकीश में विहार के कई गाँवों का स्पष्ट वर्णन मिलता है। श्ढोलामारूश की लोकगाथा में ऊँट का विशेष महत्व है क्योंकि वहाँ का यातायात साधन ऊँट ही है। पर्वतीय अंचलों में चूँकि सर्दी अधिक पड़ती है अतएव वहाँ की बालाएँ अपने पिता से कहती हैं कि (लोकगाथाओं के अंतर्गत) मेरा ब्याह ऐसी जगह मत कीजिएगा जहाँ गर्मी अधिक पड़ती हो और पसीने से परेशान हो जाऊँ। मैथिली लोकगाथाओं में वहाँ की स्थानीय प्रथाओं की झाँकी मिलती है।

भारत में मौखिक परंपरा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। वेद साहित्य भी इसी परंपरांतर्गत गुरु शिष्यों के माध्यम से आगे बढ़ता रहा और बाद में लिपिबद्ध किया गया। लोकगाथाएँ लिपिबद्ध नहीं होती थींय अपितु मौखिक परंपरा के रूप में ही चली आ रही हैं। वास्तव में इनकी महत्ता भी तभी तक है जब यह लिपिबद्ध न हों। लिपिबद्ध होने के पश्चात् इनका विस्तार रुक जाता है तथा इनकी स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है। कारण यह है कि जब तक ये मौखिक परंपरा में रहती हैं तब तक तो लोक की सामग्री रहती हैं पर जब लिपिबद्ध हो जाती हैं तब साहित्य की संपत्ति हो जाती हैं।

लोकगाथाएँ हृदय का धन होती हैं। इनमें अपने आप ही माधुर्य और स्वाभाविकता आ जाती है। इनमें अलंकृत शैली के अभाव का कारण यह है कि यह किसी व्यक्तिविशेष की संपत्ति न होकर संपूर्ण समाज की संपत्ति होती हैं। इनकी उत्पत्ति चूँकि प्राचीन काल से है तथा उस समय अलंकृत रूप का विकास नहीं हुआ था इसलिए अलंकृत शैली का अभाव स्वाभाविक है।

लोकगाथाओं में उपदेशात्मक प्रवृत्ति का नितांत अभाव पाया जाता है। लोकजीवन का संपूर्ण चित्र उपस्थित करना ही प्रायः उनका उद्देश्य होता है। लोकगाथाओं का गायन मात्र ही गायकों का कार्य होता है। उससे कुछ प्राप्त कर लेना श्रोताओं का कार्य हैं।

लोकगाथाओं में लेखक के व्यक्तित्व का पूर्ण अभाव पाया जाता है। चूँकि इन गाथाओं के रचयिता के बारे में यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वह कोई एक विशिष्ट व्यक्ति हैए इसलिए उसके व्यक्तित्व का प्रभाव भी समाज पर नहीं पड़ता। इनमें केवल विषय की प्रधानता होती हैए लेखक के व्यक्तित्व का अस्तित्व नहीं होता।

इन गाथाओं का कथानक अत्यंत विस्तृत होता है। चूँकि कथात्मक गीतों को ही लोकगाथा कहते हैं इसलिए स्वभावतः कथा के विस्तार के साथ ही गाथा का विस्तार भी बढ़ जाता है।

इसके विस्तार का दूसरा कारण यह हो सकता है कि इसे समाज अपनी संपत्ति समझता है और मनमाने ढंग से सभी इसमें कुछ न कुछ बढ़ा देते हैं। चूँकि लोकगाथाओं का उद्देश्य केवल कथा कहना होता है इसलिए ये अतीव लंबी हो जाती हैं।

लोकगाथाओं की एक उल्लेखनीय विशेषता उसके टेक पदों की पुनरावृत्ति है। गाथा को आनंददायक तथा प्रभावोत्पादक बनाने के लिए गीतों को बराबर दुहराकर गाने का प्रचलन पाया जाता है। इनकी इस प्रवृत्ति से यह विदित होता है कि ये गाथाएँ सामूहिक रूप से गाई जाती थीं। इस प्रवृत्ति से कुछ लाभ भी हैं। गाथाओं के गायन के लिए जब दो वर्ग एकत्र होते हैं तब टेक पदों की पुनरावृत्ति से वातावरण ओजस्वी हो जाता है तथा दूसरा समूह भी ऊब से बच जाता है। इस प्रवृत्ति से श्रोताओं को भी आनंद की अनुभूति होती है और गायक भी राहत तथा उत्साह अनुभव करते हैं।

संदर्भ सूची

1. बालेन्दु दाधीच, हिन्दी जगत, जनवरी–मार्च 2009, पृ. 34।
2. सुरेन्द्र विक्रम का लेख, वर्तमान साहित्य, सितम्बर 2008, पृ. 18।
3. शकुन्तला बहादुर (अमेरिका), हिन्दी जगत, जनवरी–मार्च 09, पृ. 23।
4. धम्मपद निरयवग्ग, 22/03।
5. काव्य प्रकाश, पृ. 10।